

# मतदाताओं को अंधेरे में रखने की कोशिश

डॉ. एम. डी. थॉमस

उच्चतम न्यायालय ने 2 मई 2002 को चुनाव आयोग को एक आदेश जारी किया था कि वह चुनावी उम्मीदवारों की पात्रता के तहत उन्हें दिशा-निर्देश दे। इसके मुताबिक चुनाव लड़ने वाले सभी उम्मीदवारों को अपने-अपने नामांकन पत्र के साथ ही अपनी शैक्षणिक योग्यता, आपराधिक पृष्ठभूमि, संपत्ति, वित्तीय देनदारियाँ आदि का ब्यौरा देना होगा। राजनीति के अपराधीकरण रोकने तथा चुनाव-प्रक्रिया को अधिक पारदर्शी बनाने के लिए किये गये उच्चतम न्यायालय तथा चुनाव आयोग के इस कदम को जितना सराहा जाए, कम है। लेकिन खेद की बात है कि सभी राजनीतिक दलों ने इस प्रस्ताव को आयोग द्वारा पेश की गयी शर्तों को खारिज कर दिया। राजनीतिक दलों की आशंकाएँ हैं कि इन प्रावधानों का दुरुपयोग किया जा सकता है तथा इस प्रक्रिया से व्यावहारिक दिक्कतें खड़ी हो सकती हैं। इसलिए वे ऐसे तर्क निकालते हैं कि कानून बनाने का हक संसद को ही है। इसलिए संसद चुनाव आयोग और उच्चतम न्यायालय के प्रस्ताव का स्वागत नहीं करती है। उपर्युक्त मामले से मुखलिफ सवाल उठते हैं, जिन पर गौर करना आजाद भारत के बेहतर भविष्य का सपना देखने वाले हर नागरिक का फर्ज बनता है। पहला सवाल है, चुनाव का सामना करने जा रहे उम्मीदवार अपनी आपराधिक पृष्ठभूमि का ब्यौरा देने से कतराते क्यों हैं?

देश के प्रशासन की जिम्मेदारी संभालने की शपथ लेने जा रहे उम्मीदवारों को इस बात का गर्व होना चाहिए कि वे अपने नामांकन पत्र के साथ अपनी नेकी का नक्शा पेश कर रहे हैं। उन्हें इससे खुशी होनी चाहिए कि उन्होंने अपने साफ-सुथरे चरित्र के बलबूते ही देश का नेतृत्व करने की पात्रता हासिल की है। यदि किसी की आपराधिक पृष्ठभूमि रही हो तो उसमें इतनी विनम्रता नहीं तो कम से कम तमीज होनी चाहिए कि वह अपने को प्रशासन के पुनीत कार्य में शिरकत होने लायक नहीं माने। जो अपनी आपराधिक पृष्ठभूमि के बावजूद नागरिकों का भविष्य-निर्माता बनना चाहे तो उसे भी एक मौका दिया जा सकता है, क्योंकि वह आगे भी अपराध करे, यह जरूरी नहीं है। लेकिन उसका साफ-साफ ब्यौरा देने में क्या हर्ज है? जिस चुनाव-प्रक्रिया से उन्हें सरकारी दफ्तर में दाखिल होना है वहाँ उनके चरित्र का दस्तावेज रहना चाहिए। मतदाताओं को मुगालते में नहीं रखा जाना चाहिए। कौन प्रशासन के लायक है और कौन नहीं, उसका फैसला उम्मीदवार खुद नहीं करे, वरन् मतदाता ही करे। चुनाव आयोग का फर्ज है कि वह मतदाताओं के हकों को सुरक्षित कायम रखे। साथ ही आपराधिक प्रवृत्ति वाले उम्मीदवारों को प्रशासन में आने से रोकना भी उसका कर्तव्य है। राजनीति के अपराधीकरण तथा अपराध के राजनीतिकरण के इस माहौल में प्रशासन तंत्र में सुधार लाने में उच्चतम न्यायालय की महत्वपूर्ण भूमिका भी निर्विवाद है। उसे समय-समय पर संसद का मार्गदर्शन करते रहना भी चाहिए। इस विचार से राजनीतिक दलों द्वारा उच्चतम न्यायालय और चुनाव आयोग दोनों के दिशा-निर्देश को दरकिनार करने के इस फैसले को जायज ठहराना हरगिज मुमकिन नहीं लगता है। दूसरा सवाल है, उम्मीदवार शैक्षिक योग्यता की जरूरत पर मात क्यों खाते हैं? वर्तमान समाज ने हर क्षेत्र में तरक्की की है। आज ज्ञान-विज्ञान की बेशुमार दिशाएँ खुलकर प्रगति की ओर बढ़ रही हैं। खासतौर पर शासन-तंत्र को संभालने वालों को पैनी-दृष्टि और समग्र समझ वी आवश्यकता होती है।

आज भारतीय समाज पहले से कहीं अधिक जटिल भी हो गया है। उसका मार्गदर्शन करने में विकसित विवेक चाहिए। ऐसे माहौल में भारत का नेतृत्व करने की ख्वाहिश रखने वाले उम्मीदवारों को अपनी जिम्मेदारी के मुताबिक शैक्षिक काबिलियत बहुत जरूरी है। सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में चयन प्रक्रिया प्रतियोगिता से संचालित है। इसमें

शैक्षिक योग्यता बुनियादी है। राजनीतिज्ञ ही ऐसे लोग हैं जो बगैर किसी शैक्षिक योग्यता के, अपनी लाठी के बलबूते, सर्वोच्च पद पर पहुँच सकते हैं। यह देश के प्रति अपराध है, नागरिकों के प्रति घोर अन्याय भी। इसलिए योग्यता के साथ-साथ व्यावहारिक तजुर्बे के आधार पर ही उम्मीदवारों को चयनित किया जाना चाहिए।

अशिक्षित और अयोग्य लोगों को चुनाव-प्रक्रिया के द्वारा आगे बढ़ने से रोका जाना चाहिए। इसके तहत राजनीतिक दलों द्वारा नामांकन पत्र के साथ शैक्षिक योग्यता और अन्य ब्योरा पेश करने के लिए मुस्तैद नहीं होना कदाचित न्यायसंगत नहीं है। तीसरा सवाल है, संसद के सदस्यों ने उच्चतम न्यायालय और चुनाव आयोग दोनों के संयुक्त दिशा-निर्देश को नकारा है। समाज में ही नहीं, शासन-तंत्र में भी, कानून-कायदे के मुताबिक संतुलन बनाये रखने में उच्चतम न्यायालय की अहम भूमिका है। जब हालात काबू के बाहर हो जाते हैं, उच्चतम न्यायालय का अधिकार अपने-आप बढ़ जाता है। साथ ही, चुनावी प्रक्रिया को शासन की गुणवत्ता के मद्देनजर समायोजित करना चुनाव आयोग का कर्तव्य है। उम्मीदवारों के चयन में गुणात्मक नतीजे को सामने रखते हुए अपनी नितियों में फेर-बदल करना भी आयोग के हद के भीतर ही है। शासन करना संसद के साथ-साथ उच्चतम न्यायालय और चुनाव आयोग की सम्मिलित जिम्मेदारी है। इस दृष्टि से सहयोगात्मक नीति से हटकर संसद द्वारा उच्चतम न्यायालय और चुनाव आयोग की अवमानना करना संविधान और शासन-तंत्र दोनों के अनुसार कहाँ तक तर्कसंगत और सही है?

चौथा सवाल है, चुनाव आयोग के दिशा-निर्देशों को नामंजूर करने में सभी राजनीतिक दलों की आम राय हासिल है। किसी मुद्दे पर आम सहमति बनना एक बड़ी उपलब्धि है, किंतु अक्सर यह देखा जाता है कि जिस दल के हाथ में सत्ता की बागडोर है उसके अच्छे सुझावों को भी विपक्षी दलों द्वारा किसी-न-किसी प्रकार से नकारा जाता है। सहयोगी दलों को भी प्रमुख दलों की बातों को पचाने में मुश्किलें आती हैं। राजनीतिक दलों के ऐसे स्वभाव के चलते चुनाव-प्रक्रिया में उम्मीदवारों के चरित्र की जाँच-पड़ताल के मुद्दे पर विपक्षी तथा सहयोगी दलों सहित सभी राजनैतिक दलों में हासिल हुई आम राय भारतीय राजनैतिक इतिहास में एक अनूठी घटना के रूप में नजर आती है। यह 'गिनीज बुक ऑफ रिकार्ड्स' में दाखिल होने लायक बात लगती है। 'दाल में कुछ काला है', ऐसा लगता है। हाल ही के कुछ आँकलन से आपराधिक पृष्ठभूमि वाले कतिपय महानुभाव जनता पर शासन करने में लगे हैं, इसका खुलासा हुआ है।

आज के समय में बहुत ही कम उम्मीदवार ऐसे हैं, जो आपराधिक पृष्ठभूमि या प्रवृत्ति से दूर हों, जो नेक हों, जो असल में शासन को पवित्र कार्य मानते हों। हमारे शासन तंत्र में सर्वोच्च बनने जा रहे महानुभाव 'सुरक्षा जाँच' से बचने की कोशिश करने के साथ-साथ 'सुरक्षा जाँच' के प्रावधान के खिलाफ भी हो रहे हैं, ऐसा लगता है। ऐसे रवैये से राजनीतिक दलों तथा सभी संबंधित उम्मीदवारों की पारदर्शिता पर सवालिया निशान लगता है। पाँचवाँ सवाल है, चुनावी प्रक्रिया की सुधार-योजना को नकारने से प्रशासन की अवधारणा और प्राप्त गकता दोनों पर प्रश्न-चिन्ह लग जाता है। समाज को आदर्श मूल्यों के मुताबिक सुचारु रूप से चलाने से ही प्रशासन की असली धारणा बनती है। भाँति-भाँति के स्वभाव, तौर-तरीके, रीति-रिवाज, आचार-विचार, पेशे, जाति, वर्ग, संप्रदाय, संस्कृति आदि के बीच ताल-मेल बनाये रखे बिना समाज का सार्थक अस्तित्व नामुमकिन है। आपसी सद्भाव, समन्वय और सहयोग के लिए कानून बनाने और उन्हें कायम रखने का इंतजाम बनाने में ही प्रशासन की सार्थकता निहित है। जिन्हें भ्रष्टाचार से दूषित और पीड़ित भारतीय समाज को सुधार की राह में ले जाने के लिए जी-तोड़ मेहनत करते रहना चाहिए, वे खुद नैतिक मूल्यों के व्यवहार में गिरते चले जाएँ तो समझना चाहिए कि भारत का भविष्य स्याह बनता जा रहा है। गुजरात-जसी हरकतों पर गौरव-यात्रा निकालने वाले शासक असत्य पर सत्य का मुहर लगाने की कोशिश कर रहे हैं। वे स्वयं अंधेरे में भटक रहे हैं और भारतीय समाज के साथ खिलवाड़ भी कर रहे हैं। उनसे शासन की क्या उम्मीद की जा सकती है?

शासन करने का मतलब राज करना नहीं है, बल्कि समाज की सेवा करना है। जो उसके काबिल न हो वह शासन-तंत्र में दाखिल होने की महत्वाकांक्षा ना रखें। भारतीय संस्कृति की महिमा का ढिंढोरा पीटने वाले, नागरिकों के कानों में भारत की उँचाइयों की ओर ले जाने के मंत्र फूँकने वाले हमारे तथाकथित राजनेताओं में मानव-मूल्यों के व्यवहार में ऐसा उलटा चलन देखना चारित्रिक पतन की चरम सीमा नहीं तो क्या है? भारत के सर्वोच्च पदों को अलंकृत करने वाले महानुभावों को इस हद तक पहुँचते हुए देखने से लगता है कि देश को ऐसे सुधार-योजना को पीठ दिखाने वाले शासन की जरूरत नहीं है। उच्चतम न्यायालय का आदेश और चुनाव आयोग के दिशा-निर्देश पूरी तरह से तर्कसंगत है। चुनाव प्रक्रिया को सुधारने तथा पारदर्शी उम्मीदवारों को चयनित करने के लिए लिया गया कदम वास्तव में पूरी तरह से स्वागत योग्य है और भारत को उज्ज्वल बनाने के लिए चुनाव आयोग की उपर्युक्त योजना तो बुनियादी तौर पर अपनायी जानी चाहिए।

---

**डॉ. एम. डी. थॉमस**

संस्थापक निदेशक, इंस्टिट्यूट ऑफ़ हार्मनि एण्ड पीस स्टडीज़, नयी दिल्ली  
प्रथम मंजिल, ए 128, सेक्टर 19, द्वारका, नयी दिल्ली 110075

दूरभाष: 09810535378 (p), 08847925378 (p), 011-45575378 (o)

ईमेल : mdthomas53@gmail.com (p), ihps2014@gmail.com (o)

वेबसाइट: www.mdthomas.in (p), www.ihpsindia.org (o)

Twitter: <https://twitter.com/mdthomas53>

Facebook: <https://www.facebook.com/mdthomas53>

Academia.edu: <https://independent.academia.edu/MDTHOMAS>